आवेष्ठन-चित्र के लिए लेखक अपने मित्र श्रीयुत रवींद्रनाथ देव का आभारी है।

बंगाल का काल

सन् १९४३ में रचित

कल सुधारूँगा हुई संसार में जो भूल,
कल उठाऊँगा भुजा अन्याय के प्रतिकूल।

—सतरंगिनी

बच्चन की अन्य प्रकाशित रचनाएँ

१ सतरंगिनी

२ आकुल अंतर

३ एकांत संगीत

४ निशा निमंत्रण

५ मधुकलश

६ मधुबाला

७ मधुशाला

८ खैयाम की मधुशाला

९ प्रारंभिक रचनाएँ—पहला भाग } कविताएँ

१० प्रारंभिक रचनाएँ—दूसरा भाग } कविताएँ

११ प्रारंभिक रचनाएँ—तीसरा भाग—कहानियाँ

इनके विषय में विशेष जानकारी के लिए पुस्तक के अंत में देखिए। नवीनतम कृतियों के लिए लीडर प्रेस, प्रयाग से पत्र-व्यवहार कीजिए।

बंगाल का काल

बच्चन

कोकिले, पर यह तेरा राग
हमारे नग्न-बुभुक्षित देश
के लिए लाया क्या संदेश?
साथ प्रकृति के बदलेगा इस दीन देश का भाग?

—प्रारंभिक रचनाएँ
(पहला भाग)

ग्रंथ-संख्या—१११

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भंडार
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

पहला संस्करण—मार्च, १९४६

मूल्य १)

मुद्रक
महादेव एन० जोशी
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

विज्ञापन

आज बच्चन की एक नई रचना उनकी कविता के प्रेमियों के आगे उपस्थित करते समय हमें बहुत प्रसन्नता हो रही है।

जिस समय यह लिखी गई थी, उस समय इसे प्रकाश में लाना असंभव था; कारण समस्त देश अच्छी तरह जानता है। पहले पहल इस रचना का पता लोगों को श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा संपादित 'बंग दर्शन' से लगा जिसमें इसकी लगभग सौ पंक्तियाँ प्रकाशित की गई थीं। तभी से लोग इसे संपूर्ण देखना चाहते थे। इस कविता का एक अंश अभी उस दिन 'भारत' में प्रकाशित हुआ जब प्रयाग में सरकार की अन्न-नीति के विरुद्ध प्रदर्शन हो रहा था। कविता की एक पंक्ति *'अपनी रोटी अपना राज'* शीघ्र ही जनता ने नारे के रूप में स्वीकार कर ली और सहस्रों कंठों से दुहराई गई। पूर्ण रचना के लिए लोगों की बढ़ती हुई उत्सुकता को देखकर हम इसके प्रकाशन में और अधिक विलंब न कर सके।

बच्चन की कविता के प्रेमी उनकी जिस प्रकार की रचनाओं से अब तक परिचित हो चुके हैं 'बंगाल का काल' उन सबसे भिन्न वस्तु है। इसमें आंतरिक अनुभूतियों के कवि ने अपनी दृष्टि बाहर की ओर फेरी है, किंतु यहाँ भी उन्होंने अपने व्यक्तित्व को अलग और अपनी मौलिकता को सुरक्षित रक्खा है। बंगाल के दुर्भिक्ष पर न जाने कितनी कविताएँ लिखी गई हैं। परंतु बच्चन की प्रतिक्रिया अपनी है, दृष्टिकोण अपना है। जो लोग विषय पर लिखी गई अन्य रचनाओं से पूर्व परिचित हो चुके हैं उनको इस नवीनता का आभास स्वयं होगा। और इस दृष्टिकोण की सार्थकता पर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आज

हमारे बड़े-बड़े नेता उन्हीं स्वरों में बोल रहे हैं जिसमें आज से तीन वर्ष पूर्व कवि के भाव अभिव्यक्त हो चुके थे।

बच्चन की रचनाओं में विषय और छंदों का अटूट संबंध है। 'मधुबाला' का छंद 'निशा निमंत्रण' में नहीं है। 'निशा निमंत्रण' का छंद 'सतरंगिनी' में नहीं है। 'बंगाल के काल' में जब कवि ने एक नया विषय उठाया, तो उन्होंने एक नया छंद भी उठाया। यह कविता मुक्त छंद में लिखी गई है, और इसके पूर्व बचन की कोई रचना मुक्त छंद में नहीं प्रकाशित हुई थी। छंद के चुनाव में भी उनकी मौलिकता ही रही क्योंकि जहाँ तक हमारे देखने में आया है बंगाल के काल पर और कोई कविता मुक्त छंद में नहीं लिखी गई। क्या यहाँ भी विषय और छंद में कवि ने कोई अनुरूपता ऐसी देखी है जिसे और लोगों ने नहीं देखा ?

मुक्त छंद हिंदी के लिए कोई नई चीज़ नहीं है, फिर भी लय (Rhythm) के ऊपर विशेष ध्यान देकर और तुकों का नियंत्रित उपयोग करके उन्होंने मुक्त छंद में भी एक नवीन प्रवाह उत्पन्न कर दिया है।

हमें आशा है इस रचना के द्वारा आप बच्चन—मानव और कवि—दोनों का एक नया ही रूप देखेंगे।

—**प्रकाशक**

समर्पण

अब

उन आधे करोड़ आदमियों की यादगार में

जो बंगाल-काल की क्षुधा-ज्वाल

में स्वाहा हो गए !

बंगाल का काल

पड़ गया बंगाले में काल,
भरी कंगालों से धरती,
भरी कंकालों से धरती !

दीनता ले असंख्य अवतार,
पेट खला,
हाथ पसार,
पाँच उँगलियाँ बाँध,
मुँह दिखला,
भीतर घुसी हुई आँखों से,
आँसू ढार,

मानव होने का सारा संमान विसार,
घूमती गाँव-गाँव,
घूमती नगर-नगर,
बाज़ारों-हाटों में, दर-दर, द्वार-द्वार !

अरे, यह भूख हुई साकार,
दीर्घाकार !
तृप्त कर सकता इसको कौन ?
पेट भर सकता इसका कौन ?
भूख ही होती, लो, भोजन !
मृत्यु अपना मुख शत-योजन
खोलती,
खाती और चबाती,
मोद मनाती,
मग्न हो मृत्यु नृत्य करती !
नग्न हो मृत्यु नृत्य करती !
देती परम तुष्टि की ताल,
पड़ गया बंगाले में काल,

भरी कंगालों से धरती,
भरी कंकालों से धरती !

क्या कहा ?
कहाँ पड़ गया काल,
कहाँ कंगाल,
कहाँ कंकाल,
क्या कहा, कालत्रस्त बंगाल !

वही बंगाल—,
जिसपर छाए सजल घनों की
छाया में लह-लह लहराते
खेत धान के दूर-दूर तक,
जहाँ कहीं भी गति नयनों की ।

जिसपर फैले नदी-सरोवर,
नद-नाले वर,
निर्मल निर्झर

सिंचित करते वसुंधरा का
आँगन उर्वर ।

जिसमें उगते-बढ़ते तरुवर,
लदे दलों से,
फँदे फलों से,
सजे कली-कुसुमों से सुंदर ।

वही बंगाल--
देख जिसे पुलकित नेत्रों से,
भरे कंठ से,
गद्गद स्वर से,
कवि ने गाया राष्ट्र गान वह--
वंदे मातरम्,
सुजलाम्, सुफलाम्, मलयज शीतलाम्,
शस्य श्यामलाम्, मातरम्...... ।

वंदे मातरम्--

जो नगपति के उच्च शिखर से
रासकुमारी के पदनख तक,
गिरि-गह्वर में,
वन प्रांतर में,
मरुस्थलों में, मैदानों में,
खेतों में औ' खलिहानों में,
गाँव - गाँव में,
नगर-नगर में,
डगर-डगर में,
बाहर-घर में
स्वतंत्रता का महामंत्र बन
कंठ-कंठ से हुआ निनादित,
कंठ-कंठ से हुआ प्रतिध्वनित।

जपकर जिसको आज़ादी के दीवानों ने
कितने ही
दी मिला जवानी
मिट्टी में काले पानी में।

कितनों ने हथकड़ी-बेड़ियों की झन-झन पर
जिसको गाया,
और सुनाया,
मन बहलाया
जबकि डाल वे दिए गए थे
देश प्रेम का मूल्य चुकाने
कठिन, कठोर, घोर कारागारों में ।

कितने ही जिसको जिह्वा पर लाकर
बिना हिचक के,
बिना झिझक के,
हँसते-हँसते
झूल गए फाँसीवाले तख़्ते पर,
या खोल छातियाँ खड़े हुए
गोली की बौछारों में ।

वही बंगाल--
जिसकी एक साँस ने भर दी

मरे देश में जान,

आत्म संमान,

आज़ादी की आन,

आज,

काल की गति भी कैसी, हाय,

स्वयं असहाय,

स्वयं निरुपाय,

स्वयं निष्प्राण,

मृत्यु के मुख का होकर ग्रास,

गिन रहा है जीवन की साँस।

हे कवि, तेरे अमर गान की

सुजला, सुफला,

मलय गंधिता,

शस्य श्यामला,

फुल्ल कुसुमिता,

द्रुम सुसज्जिता,

चिर सुहासिनी,

मधुर भाषिणी,
धरणी भरणी,
जगत वंदिता
वंग भूमि अब नहीं रही वह !

वंग भूमि अब
शस्य हीन है,
दीन क्षीण है,
चिर मलीन है,
भरणी आज हो गई हरणी;
जल दे, फल दे और अन्न दे
जो करती थी जीवन दान,
मरघट-सा अब रूप बनाकर,
अजगर-सा अब मुंह फैलाकर
खा लेती अपनी संतान !
बच्चे और बच्चियाँ खाती,
लड़के और लड़कियाँ खाती,
खाती युवक, युवतियाँ खाती,

खाती बूढ़े और जवान,
निर्ममता से एक समान;
वंग भूमि बन गई राक्षसी--
कहते ही लो कटी ज़बान ! ...

राम - रमा !
क्षमा-क्षमा !
माता को राक्षसी कह गया !
पाप शांत हो,
दूर भ्रांति हो ।
ठीक, अन्नपूर्णा के आँचल
में है सर्वस,
अन्न तथा रस,
पड़ा न सूखा,
बाढ़ न आई
और नहीं आया टिड्डी दल,
किंतु वंग है भूखा, भूखा, भूखा !
माता के आँचल की निधियाँ

अरे लूटकर कौन ले गया ?

हाथ न बढ़ तू,
ठहर लेखनी,
अगर चलेगी, झूठ कहेगी।
हाथों पर हथकड़ी पड़ी है,
सच कहने की सज़ा बड़ी है,
पड़े ज़बानों पर हैं ताले,
नहीं ज़बानों पर, मुँह पर भी;
पड़े हुए प्राणों के लाले—
बरस-बरस के पोसे पाले
भूख-भूख कर,
सूख-सूखकर,
दारुण दुख सह,
लेकिन चुप रह,
जाते हैं मर,
जाते हैं झर
जैसे पत्ते किसी वृक्ष के

पीले, ढीले
झंझा के चलने पर !
कृमि-कीटों की मृत्यु किस तरह
होती इससे बदतर !

बोल विश्व विख्यात मेदिनी,
बोल विश्व इतिहास शोभिनी,
बोल बंग की पुण्य मेदिनी,
बोल बंग की पूत मेदिनी,
बोल विभा की चिर प्रसूतिनी,
बोल अमृत पुत्रों की जननी—

जननी श्री गोविंद गीत के
तन्मय गायक
रसिक विनायक
कवि नृप श्री जयदेव भक्त की;
बँगला वाणी
जीवन दानी,

कवि-कुल-कोकिल चंडिदास की;
औ' पद्मापति पद अनुरागी,
गृह परित्यागी,
परम विरागी
श्री चैतन्य देव की जिनकी
भक्ति ज्वाल में
विगलित होकर
हृदय वंग का कभी ढला था !

बोल अमर पुत्रों की जननी—
जननी श्री विद्यासागर की,
राष्ट्र गीत विरची बंकिम की,
मेघनाद-वध महाकाव्य के
प्रखर प्रणेता मधुसूदन की,
मानवता के वर विज्ञानी
शरच्चंद्र की,
विश्ववंद्य कवि श्री रवींद्र की,
पिकी हिंद की सरोजिनी की,

नोरुदत्त औ श्री द्विजेंद्र की
और अग्निवीणा के वादक
कवि क़ाज़ी नज़रुलिस्लाम की ।

बोल अजर पुत्रों की जननी--
जननी, भावी के वर द्रष्टा
राजा 'मोहन राय सुधी की,
रामकृष्ण से परम यती की,
योगीश्वर अरविंद ज्ञानरत
और विवेकानंद व्रती की;
देश प्रेम के प्रथमोन्मेषक
'लाल' 'बाल' के बंधु 'पाल' औ'
विद्यावाचस्पति सुरेंद्र की,
जिसका नाम वीर अर्जुन की
अमर प्रतिज्ञा
'न पलायन' की
आंग्ल प्रतिध्वनि
बनकर हृदय-हृदय में गूँजी--

सुरेंदर नाथ,
[1]सरेंडर नाट !
जननी ऐसे नाम धनी की
औ उनके समकक्षी-से ही
वाग्मि घोष की,
देशबंधु श्री चितरंजन की,
आसुतोष की,
श्री सुबोस की !

बोल अभय पुत्रों की जननी—
परदेशी के प्रथम विरोधी,
परदेशी को प्रथम चुनौती
देनेवाले
उससे लोहा लेनेवाले
क़ासिम और सिराज वीर की,
और क्रांति के अग्रदूत

१—Surrender Not—हार न मानो—'न पलायनं'।

उस क्षुधीराम की
जिसने अपनी वय किशोर में
ही यह सिद्ध किया था अब भी
बुझी राख में आग छिपी है;
उसी आग की चिनगारी-से,
परम साहसी,
बंब प्रहारी
रास बिहारी की, जो अब भी
ऐसा सुनने में आता है,
अन्य देश में
छद्म वेष में घूम-घूमकर
अलख जगाता है हुब्बुल वतनी का।
और शहीद यतींद्र धीर की
जिसनें बंदीघर के अंदर
पल-पल गल-गल,
पल-पल घुल-घुल,
तिल-तिल मिट-मिट,
एकसठ दिन तक

अनशन व्रत रख
प्राण त्यागकर
यह बतलाया था हो बंदी देह
मगर आत्मा स्वतंत्र है !

बोल अमर पुत्रों की जननी,
बोल अजर पुत्रों की जननी,
बोल अभय पुत्रों की जननी,
बोल बंग की वीर मेदिनी,
अब वह तेरा मान कहाँ है,
अब वह तेरी शान कहाँ है,
जीने का अरमान कहाँ है,
मरने का अभिमान कहाँ है !

बोल बंग की वीर मेदिनी,
अब वह तेरा क्रोध कहाँ है,
तेरा विगत विरोध कहाँ है,
अनयों का अवरोध कहाँ है !

भूलों का परिशोध कहाँ है !

बोल वंग की वीर मेदिनी,
अब वह तेरी आग कहाँ है,
आज़ादी का राग कहाँ है,
लगन कहाँ है, लाग कहाँ है !

बोल वंग की वीर मेदिनी,
अब तेरे सिरताज कहाँ हैं,
अब तेरे जाँबाज़ कहाँ हैं
अब तेरी आवाज़ कहाँ है !

बंकिम ने गर्वोन्नत ग्रीवा
उठा विश्व से
था यह पूछा,
'के बोले मा, तुमि अबले ?'

मैं कहता हूँ,

तू अबला है ।
तू होती मा,
अगर न निर्बल,
अगर न दुर्बल
तो तेरे यह लक्ष-लक्ष सुत
वंचित रहकर उसी अन्न से,
उसी धान्य से
जिसपर है अधिकार इन्हीं का
क्योंकि इन्होंने अपने श्रम से
जोता, बोया,
इसे उगाया,
सींच स्वेद से
इसे बढ़ाया,
काटा, माड़ा, ढोया,
भूख-भूख कर,
सूख-सूखकर,
पंजर-पंजर,
गिर धरती पर

यों न तोड़ देते अपना दम
और नपुंसक मृत्यु न मरते

क्षीणकाय कुत्ते के आगे
से भी अगर हटा ले कोई
उसकी सूखी हड्डी-रोटी,
शेर की तरह गुर्राता है;
कान फटककर,
देह झटककर,
विद्युत गति से
अपना थूथन ऊपर करके,
लंबे, तीखे
दाँत निकाले
रोटी लेनेवाले की छाती के ऊपर
चढ़ जाता है,
बढ़ जाता है
ले लेने को अपना हिस्सा;
कोता क़िस्सा—

पशु को भी आता है अपने
अधिकारों पर लड़ना-मरना,
जो कि आज तुम भूल गए हो,
भूखे वंग देश के वासी !

छाई है मुरदनी मुखों पर,
आँखों में है धँसी उदासी;
विपद् ग्रस्त हो,
क्षुधा त्रस्त हो,
चारों ओर भटकते फिरते,
लस्त-पस्त हो
ऊपर को तुम हाथ उठाते,
और मनाते
'बरसो राम पटापट रोटी !'
क्योंकि सिखाया,
क्योंकि पढ़ाया,
क्योंकि रटाया,
तुम्हें गया है—

'निर्बल के बल राम !
(हाय किसी ने क्यों न सुझाया
निर्बल के बल राम नहीं हैं
निर्बल के बल हैं दो घूँसे !)

जब न राम टस से मस होते,
नहीं बरसते तुम पर रोटी,
सुरुआ-बोटी,
तुम हो अपना भाग्य कोसते,
मन मसोसते,
यही बदा था,
यही लिखा था,
'ह्वैहै वही जो राम रचि राखा,
को करि तर्क बढ़ावै शाखा—'
अंतिम साँसों से रट-रटकर
तुम जाते मर,
लेकिन जीवित भी रहने पर
कब तुम थे मुर्दों से बेहतर !

पच्छिम की है एक कहावत,
इसको सीखो,
इसको घोखो,
गॉड हेल्प्स दोज़
        टु हेल्प देमसेल्व्ज़
राम सहायक उनके होते
        जो अपने हैं स्वयं सहायक
पूर्व जन्म के
धर्म-कर्म में,
भाग्य-मर्म में
इस जीवन का अर्थ न खोजो।
यही कायरों के शरणस्थल,
यहीं छिपा करते हैं निर्बल
यहीं आड़ लेते हैं असफल।

मुझसे सुन लो
नहीं स्वर्ग से अन्न गिरेगा,
नहीं गिरेगी नभ से रोटी;

किंतु समझ लो
इस दुनिया की प्रति रोटी में,
इस दुनिया के हर दाने में,
एक तुम्हारा भाग लगा है,
एक तुम्हारा निश्चित हिस्सा,
उसे बँटाने,
उसको लेने,
उसे छीनने,
औ' अपनाने
को जो कुछ भी तुम करते हो,
सब कुछ जायज़,
सब कुछ रायज ।

अपना सारा हिस्सा खोकर,
तुम बैठे हो निश्चल होकर
कैसे कायर !
उठो भाग अब अपना माँगो,
वंग देश के भूखो जागो !

घोषित कर दो दिक्-दिगंत में
भूख नहीं है भीख चाहती,
भूख नहीं है भीख माँगती,
भीख माँगते केवल कादर,
केवल काहिल,
केवल बुज़दिल;
भूख बली है,
भूख चली है
अब अपने प्रति न्याय माँगने,
अब अपना अधिकार माँगने,
और न दो तो रार माँगने।

कम पर मत संतोष करो तुम,
होश करो तुम,
कर संतोष कहाँ तुम पहुँचे,
हटते-हटते,
कटते-कटते,
घटते-घटते,

वहाँ जहाँ संतोष मरण है ।

संतों ने संतोष सिखाया ?
इसी नतीजे पर पहुँचाया
है तुमको तो
मैं कहता हूँ
संत तुम्हारे महा लंठ थे,
पर चालाक तुम्हारे शासक,
पर चालाक तुम्हारे शोषक,
जो दे लंबे-चौड़े चंदे,
करा कीर्तन,
करा हरिभजन,
इन संतों की सरस बानियाँ
हैं तुम पर सरसाते रहते,
हैं तुम पर बरसाते रहते,
शांत रहो तुम,
भ्रांत रहो तुम,
और तुम्हारी आग न जागे,

असंतोष का राग न जागे,
और तुम्हारे मुँह के अंदर
अटका रहे राम का रोड़ा
जिससे मुख से शब्द क्रांति का निकल न पाए !

नए जगत में आँखें खोलो,
नए जगत की चालें देखो,
नहीं बुद्धि से कुछ समझा तो
ठोकर खाकर तो कुछ सीखो,
और भुलाओ पाठ पुराने।

मन से अब संतोष हटाओ,
असंतोष का नाद उठाओ,
करो क्रांति का नारा ऊँचा,
भूखो, अपनी भूख बढ़ाओ,
और भूख की ताक़त समझो,
हिम्मत समझो,
जुर्रत समझो,

क़ूवत समझो;
देखो कौन तुम्हारे आगे
नहीं झुका देता सिर अपना ।

याद मुझे हो आई सहसा
एक पते की बात पुरानी,
हुए दस बरस,
जापानी कवि योन नगूची
भारत में था,
देख देश की अकर्मण्यता
उसने यह आदेश किया था—
'यू हैव टु गिव योर पीपुल
दि सेंस, आफ़ हंगर'
'अपने देश वासियों को है तुम्हें बताना
अर्थ भूख का ।'

जबकि पढ़ा था
ख़ूब हँसा था,

जहाँ करोड़ों दिन भर मर-खप
आधा पेट नहीं भर पाते,
एक बार भी जो जीवन में
नहीं अघाते,
और जहाँ का नेता-नेता
नहीं भूलता है दुहराना
देता भाषण,
स्टार्रविंग मिलियन—
भूखे अनगिन,
वहाँ सुनाना
'अपने देशवासियों को है तुम्हें बताना
अर्थ भूख का',
कितना उपहासास्पद, सच है,
कवि ही ठहरे,
जल्प दिया जो जी में आया।

बीत गए दस बरस देश के,
पड़ा काल बंगाल भूमि पर

और पढ़ा पत्रों में मैंने,
कैसे भूखों के दल के दल
गहना-गुरिया, बर्तन-भाँड़ा
गैया-गोरू, बैल-बछेरू,
बोरी-बँधना, कपड़ा-लत्ता,
ज़र-ज़मीन सब बेच-बाचकर,
पुश्तैनी घर-बार छोड़कर,
चले आ रहे हैं कलकत्ता।

कैसे भूखों के दल के दल
दर-दर मारे-मारे फिरते,
दाने-दाने को बिललाते,
ग्रास-ग्रास के लिए तरसते,
कौर-कौर के लिए तड़पते,
मौत मर रहे हैं कुत्तों की;
अरे नहीं,
कुत्ता भी मरता नहीं इस तरह,
मौत मर रहे हैं कीड़ों की,

या इनसे भी निम्न कोटि की ।
(उफ़, मनुष्य के महापतन की
बनी न सीमा !)

और सुना जब मैंने यह भी,
भूखे देखे गए छीनकर
बच्चों से निज रोटी खाते,
या कि बेचते उनको हाटों
में कुछ ताँबे के टुकड़ों पर,
जिससे दो दिन और जिएँ वे
पशु का जीवन,
और फिरें फिर
घूरों पर,
कूड़ाख़ानों पर,
और अधिक गंदी जगहों पर,
उठा दाँत से लेने को यदि
कोई दाना वहाँ पड़ा हो—
मानवता को निंदित करते,

लज्जित करते,
मानव को मानव संज्ञा से
वंचित करते..............

तब मैंने यह कहा कि हमने
अर्थ भूख का अभी न जाना,
हमें भूख का अर्थ बताना,
भूखो, इसको आज समझ लो,
मरने का यह नहीं बहाना !

फिर से जीवित,
फिर से जाग्रत,
फिर से उन्नत
होने का है भूख निमंत्रण,
है अवाहन।

भूख नहीं दुर्बल, निर्बल है,
भूख सबल है,

भूख प्रबल है,
भूख अटल है,
भूख कालिका है, काली है,
या काली सर्व भूतेषु
क्षुधा रूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै,
नमस्तस्यै, नमोनमः !

भूख प्रचंड शक्ति शाली है,
या चंडी सर्व भूतेषु
क्षुधा रूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै,
नमस्तस्यै, नमोनमः !

भूख अखंड शौर्य शाली है,
या देवी सर्व भूतेषु
क्षुधा रूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमोनमः !

भूख भवानी भयावनी है,
अगणित पद, मुख, कर वाली है,
बड़े विशाल उदरवाली है।
भूख धरा पर जब चलती है,
वह डगमग-डगमग हिलती है।
वह अन्याय चबा जाती है,
अन्यायी को खा जाती है,
और निगल जाती है पल में
अन्यायी का दुःसह शासन,
हड़प चुकी अब तक कितने ही
अत्याचारी सम्राटों के
छत्र, किरीट, दंड, सिंहासन !

नहीं यकीन तुम्हें आता है ?
नहीं सुनाई तुम्हें किसीने
कभी फ्रांस की क्रांति अभी तक ?
भूखों ने की क्रांति वहाँ थी।

तुम भूखे हो मरनेवाले,
हाथ हाथ पर धरनेवाले,
वे भूखे थे जीनेवाले,
हाथ उठा कुछ करनेवाले
साहस वाले, सीनेवाले।

बीते बरस एक सौ चौवन,
यह विप्लव विस्फोटक फूटा
फ्रांस देश में,
जो अनियंत्रित राज शक्ति का
अटल केंद्र था,
अडिग दुर्ग था।

राजा निज वैभव विलास की
सामग्री संचित करने में,
रम्य महल औ' भव्य भवन के
निर्मित औ' सज्जित करने में,
और महत्वाकांक्षा प्रेरित

समर योजनाओं के ऊपर
बहा रहा था धन ऐसे जैसे हो पानी !

और फ्रांस की प्रजा बिचारी,
प्रजा दुखारी,
दुर्दिन मारी,
यह कर भारी
अदा कर रही थी अपने जीवन के रक्त कणों से !

सहने की सीमा आ पहुँची;
बहुत प्रजा ने राजा को समझाना चाहा,
अपना कष्ट बताना चाहा,
पर अभिमानी
करता चला गया मनमानी !

पुरुष निवासी थे पेरिस के
नहीं वहाँ रहते थे हिजड़े,
नहीं वहाँ बसते थे ज़नखे,

जो सारे अत्याचारों को
या अमानुषिक व्यवहारों को
शीश झुकाकर सह लेते हैं ;

क्रोधानल से,
महा प्रबल से
धधक उठी छाती पेरिस की ;
एक लपट में राख हो गया
बास्तील का क़िला पुराना,
जो प्रतीक बन खड़ा हुआ था
राजा की सत्ता-प्रभुता का ।

और दगी यह आग देश के
हर कोने में,
हर गोशे में,
उथल-पुथल मच गई फ्रांस में,
घोर अराजकता ने अपना पाँव पसारा,
बिखरा शीराज़ा समाज का,

अन्न हो गया ग़ायब सहसा
पेरिस की हाटों-बाटों से,
लगे तड़पने लोग भूख से !

सुनो हाल अब ज़रा उधर का ।
राजा-रानी
तज रजधानी,
ले रक्षक, सेना, सेनानी,
चले गए थे वरसाई को
ग्यारह मील दूर पेरिस से ।

एक मनोहर वनस्थली में
वरसाई गर्विता बसी थी,
ऋद्धि-सिद्धि, संपत्ति, विभव से
वैभव से सब भाँति लसी थी ।
गुंबद, कलश, धरहरे वाले
नभ-चुंबी प्रासाद खड़े थे,
जिनके चारों ओर सुशोभित

हरे, घने उद्यान बड़े थे ।
झलक रहा था जहाँ-तहाँ पर
झीलों का नीलम-सा पानी,
करते थे संगीत मनोरम
जिधर-तिधर झरने सैलानी ।
शीतल, मंद, सुगंधित सारी
चिंताओं को हरनेवाला
पवन सदा उसपर बहता था,
मानो वह कहता रहता था--
नहीं यहाँ कोई आएगा
भंग शांति को करनेवाला ।
(कितना था अज्ञान यहाँ पर
कल होनेवाले ऊधम से !)

जब पेरिस भूखों मरता था
वृद्ध पिता-माता फैलाए
हाथ पुत्र से यह कहते थे,
'बेटा भूख लगी है रोटी !'

तब वरसाई के शातू[1] में
झाड़ और फ़ानूस सुसज्जित
सबसे बड़े हाल के अंदर
भोज दे रहे थे नृप-दंपति,
होने को शरीक जिसमें थे
सब अमीर-उमरा आमंत्रित।

जब पेरिस भूखों मरता था,
पत्नी अपने पति के आगे
प्रेम और यौवन का सारा
स्वप्न तथा रोमांस भूलकर
हाथ पसारे यह कहती थी,
'प्यारे भूख लगी है रोटी',
तब वरसाई के शातू में
हँसी दिल्लगी और मनोरंजक
गप्पों के फ़ौवारों में,

१—फ्रांसीसी शब्द है, अर्थ है महल।

ह्विस्की, ब्रैंडी, शैम्पेन की
बोतल की बोतल के मुँह से
काग उड़ रहे थे पल-पल पर।

जब पेरिस भूखों मरता था,
बच्चे माओं के आँचल को
थाम दृगों में आँसू भर-भर
मचल-मचल रोते-चिल्लाते
थे कहते, 'मा भूख लगी है,
रोटी लाओ, रोटी लाओ!',
तब वरसाई के शातू में
रंग-बिरंगी वर्दी पहने
चतुर बजनिए झूम-झूमकर
बैंड गहागह बजा रहे थे,
और बिगुल की धुतू-धकर के
झंडों की हर-हर फर-फर के
बीच अंतनत[१] गर्वित-ग्रीवा

१—Marie Antoinette—फ्रांस के राजा लुई सोलहवें की पत्नी

(हुई नाम से निश्चित क़िस्मत)
राज कुँवर को लिए गोद में,
भरी मोद में,
किए लुई को पीछे-पीछे,
घूम रही थी मेहमानों में,
जैसे हो चंदा तारों की भरी सभा में।

जिधर दृष्टि जाती थी उसकी,
खड़ी क़तारें सामंतों की
खड्ग हवा में लहराती थीं,
झहराती थीं,
झनकाती थीं,
चमकाती थीं,
और उठा मदिरा के प्याले,
राज स्वास्थ्य के लिए उन्हें पी,
राजभक्ति की सौगंधें खाती थीं।

जब पेरिस भूखों मरता था

बच्चों से लेकर बूढ़े तक
क्षीण हो रहे थे दिन-प्रतिदिन,
तब मेज़ों की जूठन खाकर
ख़ूब अघाकर,
मुटा रहे थे वरसाई के कुत्ते-कुत्ते।

एक सबेरे,
बेटे ने भूखी मा देखी !
पति ने भूखी पत्नी देखी !
मा ने देखे भूखे बच्चे !
और एक निश्चय से सारा
पेरिस पल में एक हो गया !

सड़क-सड़क से, हाट-हाट से,
गली-गली से, बाट-बाट से,
घर-घर से औ' घाट-घाट से,
दर-दर से औ' दूकानों से,
दफ़्तर से औ' दीवानों से,

होटल से, काफ़ीख़ानों से,
दूर-दूर से, पास-पास से
एक उठी आवाज़ और वह
गूँज गई संपूर्ण नगर में—

एलों[1]-एलों, एलों, एलों !
चलो चलें, चलें चलो !
घर छोड़ो, बाहर निकलो !
एलों-एलों !
चलो-चलो !
एलों-एलों !
मिलो-मिलो !
एलों-एलों !
सब मिलकर के साथ चलो !
एलों-एलों !
साथ चलो औ' साथ बढ़ो !

१—Allons फ्रांसीसी शब्द है, अर्थ है 'आओ चलें'।

एलों-एलों, एलों-एलों !
साथ बढ़ो औ' साथ रहो,
जो कुछ कहना साथ कहो,
जो कुछ करना साथ करो,
जो कुछ बीते साथ सहो,
साथ जिओ सब, साथ मरो !
एलों-एलों, एलों-एलों !

जो जिसके हथियार लग गया
हाथ वही वह लेकर निकला,
कोई ले बंदूक पुरानी,
कोई ले तलवार दुधारी,
कोई बल्लम, कोई फरसा,
कोई बरछी, कोई बरछा,
कोई भाला, कोई नेज़ा,
कोई सीधा, कोई तिरछा,
कोई छुरी और कटारी,
कोई छुरा और भुजाली,

कोई कुल्हरी और कुदाली,
कोई आरा, कोई आरी;
जिनको कुछ न मिला पेड़ों की
शाख़ लिए हाथों में निकले,
टेढ़ी-मेढ़ी, भद्दी, भारी
या पत्थर ईंटे नोकीले !

एक सबेरे
फटे-पुराने कपड़े पहने,
बाल बिखेरे,
बालक, वृद्ध, युवा, नर, नारी
कितने, इनको कौन गिने रे,
क्षीणकाय पर दृढ़ संकल्पी,
सज बेढंगे हथियारों से,
सज बेडोले औज़ारों से,
आसमान में उन्हें उठाते,
उन्हें घुमाते औ' उछालते
हुए इकट्ठा,

ठट्टिम ठट्टा,
पेरिस के उस राजमार्ग पर,
जो वरसाई को जाता था !

और बढ़े फिर उसी ओर को
भरे जोश में,
भरे रोष में,
जैसे सावन की बरसाती
नदी बाढ़ पर, जल-मदमाती,
हिल्लोलित, कल्लोलित होती,
और ढहाती कूल किनारे,
और बहाती तट वृक्षों को,
बढ़ा पाट-सी चौड़ी छाती
चली जा रही हो अबाध गति
अंबुधि से मिलने को !

कौन रोकता उसका वेग,
कौन रोकता उसका नाद ?

इन्क़लाब ज़िंदाबाद !
सब मनुष्य हैं एक समान,
इन्क़लाब ज़िंदाबाद !
एक विधाता की संतान,
इन्क़लाब ज़िंदाबाद !
सब आज़ादी के हक़दार,
इन्क़लाब ज़िंदाबाद !
स्वतंत्रता के दावेदार,
इन्क़लाब ज़िंदाबाद !
नहीं किसीको है अधिकार,
इन्क़लाब ज़िंदाबाद !
करे किसी पर अत्याचार,
इन्क़लाब ज़िंदाबाद !—

इस निनाद से,
इस जिहाद से
थर-थर काँप उठी वरसाई,
इस प्रकार से जैसे कोई

छुईमुई की मृदु लतिका-सी,
अक्षतयोनि अबोध कुमारी
देख बलिष्ठ किसी पट्ठे को
हट्टे-कट्टे,
जिसके ताक़तवाले गट्टे,
जो कामातुर
होकर निर्भय, होकर निष्ठुर
बलात्कार करने को उसकी
ओर बढ़ा आता हो ।

भूखों के दल का वरसाई
में घुसना था, ग़ज़ब हो गया !
बिगड़े साँड़ धँस पड़े मानो
शीशे-चीनी के बर्तन के बाज़ारों में ।
क्या-क्या टूटा,
क्या-क्या फूटा,
और गया किस-किस को लूटा ?
सब कुछ टूटा,

सब कुछ फूटा,
और गया सारा कुछ लूटा ।

'आख़िर क्या तुम चाह रहे हो,
आख़िर क्या है माँग तुम्हारी ?'
'ब्रेड ऐंड स्पीच विद द किंग
ब्रेड ऐंड नाट टू मच टाकिंग'[१]
'बस दो बातें मोटी-मोटी
अपना राजा अपनी रोटी !'

हू-हा करते,
शोर मचाते,
औ' ग़ौग़ा से गगन गुँजाते,
कटु कर्कश स्वर से चिल्लाते,
लोग चले आते हैं कहते,
हाथ उठाते,

१—अर्थ है, रोटी और राजा से साक्षात्कार; रोटी, बिना किसी बात और बहस के ।

'करेज फ्रेंड्स !
वी शैल नाट वांट ब्रेड नाऊ,
वी आर ब्रिंगिंग यू द बेकर
द बेकरेस ऐंड बेकर्स ब्वाय'[१]
'अब निराश मत हो हे मित्रो,
रोटी की अब कमी न होगी,
देखो आज पकड़कर हम सब
बावर्ची, बावर्चिन लाए,
बावर्ची का बेटा
हमें बना अब देंगे रोटी
और भरेंगे पेटा,
भाई ख़ूब भरेंगे पेटा'--

विश्व विजयिनी भूख भवानी
का है यह लश्कर लासानी,

१—अर्थ है, दोस्तो डटे रहो, अब हमें रोटी की कमी न रहेगी। देखते नहीं हम तुम्हारे लिए बावर्ची, बावर्चिन और उसका बेटा लेकर आ रहे हैं (तात्पर्य है राजा, रानी और राजकुमार से)।

जो अब पेरिस को आता है,
राज शक्ति पर फ़तहयाब हो ।
राजा-रानी,
मंत्री मानी,
संरक्षक, सेना, सेनानी,
औ अमीर-उमरा अभिमानी
होकर श्रीहत,
हो नतमस्तक,
चुप्पी साधे
और बग़ल में मुट्ठी बाँधे
घिरे हुए बलवाई दल से
चले आ रहे हैं पेरिस को
धीरे-धीरे-धीरे ।

ज़्यादातर पैदलवाले हैं,
पर सवारियाँ
जो भी मिल पाई हैं उनपर
लोग ठसाठस बैठ गए हैं ।

आज विजय के पागलपन में
उन्हें नहीं कुछ अता-पता है,
किसके नीचे, किसके ऊपर;
बाल बिखेरे, चिथड़े पहने,
लिए हाथ में लोहे के छड़,
मर्द-औरतें कूद-कूदकर
जा बैठी हैं
तोप गाड़ियों पर, तोपों पर।

आसा-बल्लम,
फरसे-बरछे,
तेगे-नेज़े,
फाले-भाले,
औ' बंदूकों की संगीनें
उठी हवा में उचक रही हैं,
खुँसे हुए उनकी नोकों के
ऊपर है रोटी के टुकड़े,
मानो यह घोषित करती हैं—

हाथ दीनता से फैलाकर
नहीं भीख हम हैं ले आई,
किंतु वीरता से लड़भिड़कर
हमने अपनी रोटी पाई !

ऋषियों ने सत्य ही कहा--
वीरभोग्या वसुंधरा ।

ओ बंगाल देश के भूखो !
एक नज़र तुम इनको देखो,
एक नज़र अपने को देखो;
इनके कंधे से तुम अपना कंधा नापो,
इनके सीने से तुम अपना सीना नापो,
इनके बाज़ू से तुम अपने बाज़ू नापो !

अरे कहाँ ये, अरे कहाँ तुम,
कहाँ खड़े ये, कहाँ पड़े तुम,
कहाँ खड़े ज़िंदा दिल वाले,

कहाँ पड़े बेदम के बूदम !
कहाँ हथेली पर सिर रक्खे
हक़ पर लड़नेवाले योद्धा,
कहाँ हथेली से सिर ढाँपे
पज़मुर्दा माटी के धोंधा !

मिट्टी के पुतले ये भी हैं
पर इनकी छाती के अंदर
जोश और जज़्बा के झंझा
औ' तूफ़ान किसी ने फूँके
और तुम्हारे अंदर चलतीं
केवल उखड़ी-उखड़ी साँसें !

काश कि मुझमें ताक़त होती
मैं अपनी प्राणप्रद वाणी
पास तुम्हारे पहुँचा करके
जीवन, जागृति औ' उन्नति का
नव संदेश तुम्हें दे सकता !

एक नबी की आवश्यकता
आशा वाले,
जादू वाली भाषा वाले,
जो आए औ' तुम्हें बताए,
दृढ़ता से दिल में बैठाए—
तुम मनुष्य हो
औ' मनुष्य की तुममें सत्ता,
जो मनुष्य ने किया,
मनुष्य उसे कर सकता।

यदि इसपर विश्वास जमाओ
तो हे वंग देश के वासी,
बदल जायगा भाग्य तुम्हारा,
काल तुम्हारा,
देश तुम्हारा,
वेश तुम्हारा,
और तुम्हारे नए जन्म का नया सितारा
चमकेगा ऊँचा होकरके आसमान में !

तुम अपने को पहचानो तो--
मनोवृत्तियों के परिवर्तन
में कुछ देर नहीं लगती है--
आशा नहीं हिमालय के कंदर
के अंदर छिपी हुई है,
औ' विश्वास नहीं बैठा है
हिंद महासागर की तह में;
धरो हाथ सीने पर देखो
दोनों धड़क रहे हैं दिल में,
दुनिया का कोई भी इंजन
इससे बड़ा नहीं ताक़त में।
इसे चला दो, फिर देखोगे
ओ बंगाल देश के वासी,
प्रबल शक्ति वाले सैनिक तुम,
धन-धरती से नाता तोड़े,
और मृत्यु के निकट पहुँचकर
पुरजन-परिजन से तृण तोड़े,
केवल सबसे बड़ा मोह प्राणों का

घड़ी मुक्ति की,
घड़ी शक्ति की,
घड़ी पुण्य की
तब आएगी,
कोटि-कोटि तुम वंग निवासी
एक साथ हो निकल पड़ोगे,
और एक स्वर से बोलोगे,
चलो-चलो हे चलो-चलो,
मिलो-मिलो हे मिलो-मिलो,
मिल-मिलकरके साथ चलो,
साथ चलो औ' साथ बढ़ो,
साथ बढ़ो औ' साथ रहो,
साथ रहो औ' साथ कहो,
साथ उठाओ एक निनाद,
साथ उठाकर अपने हाथ,
अपनी रोटी, अपना राज,
इन्क़लाब ज़िंदाबाद !
अपनी रोटी, अपना राज—

इस नारे को अपना करके
धर्म युद्ध के लिए चल पड़ो ।
शपथ अन्न की लेकर कहता,
जो मनुष्य है भूखा रहता
वह पापी है,
जो कि भूख की ज्वाला सहता
वह पापी है,
और भूख से जो मरता है
महा पातकी;
उसकी छाया को छूने से
नरक डरेगा ।

ऋषियों की यह
दिक्-दिग व्यापी,
युग-युग थापी,
अमर घोषणा भूल गए तुम ?—
अन्न प्राण है,
अन्न यज्ञ है,

अन्न ब्रह्म है !

नहीं अन्न से
आज ब्रह्म से वंचित हो तुम,
नहीं अन्न से
आज धर्म सें वंचित हो तुम,
नहीं अन्न से
आज कर्म से वंचित हो तुम ।

उठो अन्न के लिए लड़ो तुम,
उठो धर्म के लिए लड़ो तुम,
उठो ब्रह्म के लिए लड़ो तुम,
ओ ऋषियों को अपना पूर्वज
कहनेवालो,
उठो आज अपनी सत्ता के
मूल केंद्र की रक्षा के हित
निकल पड़ो तुम,
विकल बनो तुम !

वरसाइयाँ बहुत हैं अब भी,
शायद क्रूर-कठिन पहले से,
बरसाएँगी तुम पर गोली
और तुम्हें मरना भी होगा !
लेकिन इतना निश्चित जानो
मरकर ही तुम जी पाओगे,
जीने से तुम मर जाओगे ।

अपने अधिकारों पर लड़ते
अगर मरे तुम ख़ून तुम्हारा
कवि की क़लमों से लिख देगा
अमर कथा वह बलिदानों की
जिसको पढ़कर, जिसको सुनकर
मुर्दों में जीवन आएगा,
ज़िंदों में यौवन आएगा ।

किंतु मरे यदि मानवता खो
—और सुना इस तरह लाखहा

कढ़िल-कढ़िलकर मौत पा चुके--
तो अपने को धन्यवाद दो
क्योंकि चील, कौओं, स्यारों के
भोजन के तुम योग्य हो सके।

सुनकर तुम दुर्भिक्ष निपीड़ित
हुआ द्रवित है सारा भारत,
जगह-जगह पर फंड खुले हैं,
जगह-जगह चंदा होता है,
कर मुशायरा, कवि-सम्मेलन,
नाटक, मैच, नुमाइश, नर्तन,
लोग इकट्ठा धन करते हैं,
और तुम्हें पहुँचाते रहते।

पर विश्वास अटल है मेरा,
कुछ न बनेगा इन चंदों से,
कितने दिन इसको खाओगे ?
और जियोगे इसपर कब तक ?

यह चंदा तो थोड़ा ही है
सिंहानियाँ पद्मपत की सब,
खेतानों की औ' बिड़ला की,
साराभाई, डालमिया की,
बालचंद की, हुकुमचंद की,
हिज़हाईनेस आग़ा खाँ की,
औ निज़ाम की,
जो कि सुना जाता है सबसे
धनी व्यक्ति हैं इस दुनिया के,
और चचा इन सबके क़ारूँ
और लकड़ दादा कुबेर की,
सारी दौलत भी मिल जाए,
तो हे वंग देश के भूखो
नहीं बचा तुमको सकती है !

तुम्हें जानना है मनुष्य तुम
और नहीं कीचड़ के कीड़े
जो आहार तथा मैथुन कर

मर जाने को जीवन पाते
        तुम्हें आत्म-सम्मान चाहिए !

तुम्हें जानना है मनुष्य तुम,
नहीं गुलाम देवताओं के,
और न उनके दया पात्र ही,
और न उनके ऊपर निर्भर,
        तुम्हें आत्म-अवलंब चाहिए !

तुम्हें जानना है मनुष्य तुम,
और मानवी अधिकारों पर
जबकि खड़े होगे तुम डटकर
कोई शक्ति नहीं ऐसी जो
तुम्हें हटा दे तिल भर पीछे,
        तुम्हें आत्म-विश्वास चाहिए !!

तुम्हें जानना है मनुष्य तुम,
जीवन में जो कुछ भी जीने

के लायक़ है उसकी रक्षा
में यदि प्राण गँवाना हो तो
नहीं हिचकना कभी उचित है,
लेकिन भिन्न आत्म-हत्या से
तुम्हें आत्म-बलिदान चाहिए !

और ख़रीदे कभी नहीं ये
जा सकते सोने-चाँदी से ।
मेरे पैसे या दो पैसे
किस मसरफ़ के तुमको होते,
इसीलिए यह अपनी वाणी
तुम्हें भेजता हूँ चंदे में,
संभव है तुमको कुछ बल दे,
और कालिका करे प्रेरणा,
निकल पड़ो तुम सहसा कहकर—
अपनी रोटी अपना राज,
इन्क़लाब ज़िंदाबाद !

समाप्त

बच्चन की

अन्य प्रकाशित रचनाओं का विवरण

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

सतरंगिनी

(कवि की नवीनतम रचना)

यह कवि की १९४२-४४ में लिखित सौंदर्य, प्रेम और यौवन के ५० गीतों का संग्रह है। सौंदर्य, प्रेम और यौवन कवि के लिए नए विषय नहीं हैं। मधुशाला और मधुबाला की पंक्ति-पंक्ति में सौंदर्य की दुर्दम आसक्ति है, प्रेम की अमिट प्यास है और है यौवन का अनियंत्रित उन्माद। पर निशानिमंत्रण के अंधकार और एकांत संगीत के एकाकीपन से निकलकर जब कवि ने पुनः उन विषयों पर लेखनी उठाई है तब उसने केवल एक पिछले अनुभव को नहीं दुहराया। सौंदर्य पर मुग्ध होने वाली आँखों ने जीवन की बहुत कुछ असुंदरता भी देखी है, प्रेम के प्यासे हृदय ने उपेक्षा और घृणा का भी अनुभव किया है और उषा की मुसकान में नहाती हुई काया कितनी बार तिमिर के सागर में डूब-उतरा चुकी है।

मधुशाला और मधुबाला में जो सौंदर्य, प्रेम और यौवन है उसके आगे प्रश्न वाचक चिह्न लगा हुआ है। सतरंगिनी में उनके प्रति अडिग विश्वास है, वे अब केवल व्यक्ति की प्रेरणा मात्र न होकर विश्व जीवन की वह धुरी है जिनपर वह युग-युग से घूमता आया है और घूमता जायगा।

बच्चन ने जीवन की मान्यताओं को सहज में ही कभी स्वीकार नहीं किया। उनका यह परिणाम भी स्वानुभव का मूल्य देकर संचित किया गया है, पुस्तक पढ़कर देखिए।

संस्करण समाप्त हो रहा है। देर करने से आपको दूसरे संस्करण की बाट देखनी पड़ेगी।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

आकुल अंतर

(दूसरा संस्करण)

यह कवि की १९४०-४२ में लिखित ७१ गीतों का संग्रह है। कवि को अपनी पिछली रचना 'एकांत संगीत' लिखते समय आभास हुआ था कि उसकी कई कविताएँ आंतरिक अशांति को व्यक्त न करके बाह्य विह्वलता को मुखरित करती हैं। इस कारण भविष्य में उन्होंने अपने गीतों को 'आकुल अंतर' और 'विकल विश्व' दो मालाओं में रखकर आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार की विक्षुब्धता को अलग अलग वाणी देने का निश्चय किया था। दोनों मालाओं के गीत इन तीन वर्षों में पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। इस पुस्तक में कवि ने 'आकुल अंतर' माला के अंतर्गत लिखित ७१ गीतों को संगृहीत किया है।

'एकांत संगीत' से 'आकुल अंतर' में कितना परिवर्तन आया है, यह केवल इस बात से प्रकट हो जायगा कि 'एकांत संगीत' का अंतिम गीत था 'कितना अकेला आज मैं' और 'आकुल अंतर' का अंतिम गीत है 'तू एकाकी तो गुनहगार'। भावों की किन-किन अवस्थाओं से यह परिवर्तन आया है, इसे देखना हो तो 'आकुल अंतर' पढ़िए।

छंद और तुक के बंधनों से मुक्त केवल लय के आधार पर लिखे गए कुछ गीत हिंदी के लिए सर्वथा नवीन और सफल प्रयोग हैं।

दूसरा संस्करण ख़तम हो रहा है। अपनी प्रति शीघ्र मँगा लें।

एकांत संगीत

(तीसरा संस्करण)

यह कवि की १९३८-३९ में लिखित एक सौ गीतों का संग्रह है। देखने में यह गीत 'निशा निमंत्रण' के गीतों की शैली में प्रतीत होते हैं, परंतु पद, पंक्ति, तुक, मात्रा आदि में अनेक स्थानों पर स्वतंत्रता लेकर कवि ने इनकी एकरूपता में भी विभिन्नता उत्पन्न की है।

कवि ने जिस एकाकीपन का अनुभव निशा निमंत्रण में मुखरित किया था उसकी यहाँ चरम सीमा पहुँच गई है। 'कल्पित साथी' भी साथ में नहीं है। कवि के हृदय में वेदना इतनी घनीभूत हो गई है कि उसे बताने के लिए वातावरण की सहायता की भी आवश्यकता नहीं होती। गीतों का क्रम रचना-क्रम के अनुसार होने से कवि की भावनाओं का जैसा स्वाभाविक चित्र यहाँ आपको मिलेगा वैसा और किसी कृति में नहीं।

कवि ने जीवन के एकांत में क्या देखा, क्या अनुभव किया, क्या सोचा, यदि इसे जानना चाहते हैं तो एकांत संगीत को लेकर एकांत में बैठ जाइए। जीवन में एक स्थान पर प्रत्येक व्यक्ति एकाकी है। इन गीतों को पढ़ते हुए आप यही अनुभव करेंगे कि जैसे आपके ही जीवन के एकाकी क्षणों के चिंतन और मनन को कवि ने वाणी प्रदान कर दी है। बच्चन की यह विशेषता है कि वह व्यक्तिगत अनुभवों को कला के धरातल पर लाकर सार्वजनीन बना देते हैं।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

निशा निमंत्रण

(चौथा संस्करण)

यह कवि की १९३७-३८ में लिखित एक कहानी और एक सौ गीतों का संग्रह है। 'निशा निमंत्रण' के गीतों से बच्चन की कविता का एक नया युग आरंभ होता है। १३-१३ पंक्तियों में लिखे गए ये गीत विचारों की एकता, गठन और अपनी संपूर्णता में अंग्रेज़ी के सॉनेट्स की समता करते हैं।

'निशा निमंत्रण' के गीत सायंकाल से आरंभ होकर प्रातः-काल समाप्त होते हैं। रात्रि के अंधकारपूर्ण वातावरण से अपनी अनुभूतियों को रंजित कर बच्चन ने गीतों की जो शृंखला तैयार की है वह आधुनिक हिंदी कविता के लिए सर्वथा मौलिक वस्तु है। गीत एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि यह सौ गीतों का संग्रह न होकर सौ गीतों का एक महागीत है, शत दलों का एक शतदल है।

एक ओर तो इनमें प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण है दूसरी ओर हर प्राकृतिक दृश्य के साथ कवि की भावनाओं का ऐसा संबंध दिखाया गया है मानो कवि की भावनाएँ स्वयं उन प्राकृतिक दृश्यों में स्थूल रूप पा गई हैं। सूर्यास्त के साथ कवि की आशाएँ टूट गई हैं। रात के अंधकार में कवि का शोक छा गया है। प्रभात की अरुणिमा में भविष्य का संकेत कर कवि ने विदा ले ली है।

इसका सौंदर्य देखना हो तो शीघ्र ही अपनी प्रति मँगा लीजिए।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

मधुकलश

(चौथा संस्करण)

यह कवि की १९३५-३६ में लिखित 'मधुकलश', कवि की वासना', 'कवि की निराशा', 'कवि का गीत', 'कवि का उपहास', 'लहरों का निमंत्रण', 'मेघदूत के प्रति' आदि कविताओं का संग्रह है।

आधुनिक समय में समालोचकों द्वारा बच्चन की कविताओं का जितना विरोध हुआ है संभवतः उतना और किसी कवि का नहीं हुआ। उन्होंने अपने विरोधियों की कटु आलोचनाओं का उत्तर कभी नहीं दिया परंतु उससे जो उनकी मानसिक प्रतिक्रिया हुई है उसे अवश्य काव्य में व्यक्त किया है। उत्तर प्रत्युत्तर में जो बात कटु हो जाती वही कविता में किस प्रकार मधुर हो गई है, 'मधुकलश' की अधिकांश कविताएँ इसका प्रमाण हैं। कवि ने चारों ओर के आक्रमण के बीच किन भावनाओं और विचारों से अपनी सत्ता को स्थिर रक्खा है उसे देखना हो तो आप 'मधुकलश' की कविताएँ पढ़िए। इनके अंदर साहित्य के आलोचकों को ही नहीं जीवन के आलोचकों को भी उत्तर है, कवि के लिए ही नहीं मानवता के लिए भी संदेश है।

इसी पुस्तक के विषय में विश्वमित्र ने लिखा था, 'बच्चन जी की कविताएँ पढ़ते समय हमें इस बात की प्रसन्नता होती है कि हिंदी का यह कवि मानवता का गीत गाता है।'

यह संस्करण भी समाप्त होने को है। अपनी प्रति शीघ्र मँगा लें।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

सं० ६

मधुबाला

(छठा संस्करण)

यह कवि की १९३४-३५ में लिखित 'मधुबाला' 'मालिक मधुशाला', 'मधुपायी', 'पथ का गीत', 'सुराही', 'प्याला', 'हाला', 'जीवन तरुवर', 'प्यास', 'बुलबुल', 'पाटल माल', 'इस पार—उस पार', 'पाँच पुकार', 'पगध्वनि' और 'आत्म परिचय' शीर्षक कविताओं का संग्रह है।

मधुशाला के पश्चात लिखे गए इन नाटकीय गीतों में मधुबाला और मधुपायी ही नहीं प्याला, हाला और सुराही आदि भी सजीव होकर अपना अपना गीत गाने लगे हैं। कवि को मधुशाला का गुणगान करने की आवश्यकता नहीं रह गई, वह स्वयं मस्त होकर आत्म-गान करने लगी है। जिस समय यह गीत लिखे गये थे उस समय 'हाला', 'प्याला', 'मधुशाला' के रूपक हिंदी में नए ही थे, फिर भी कवि ने उन्हें अपने कितने भावों, विचारों और कल्पनाओं का केंद्र बना दिया है इसे आप गीतों को पढ़कर स्वयं देख लेंगे। इन गीतों में आप पाएँगे विचारों की नवीनता, भावों की तीव्रता, कल्पना की प्रचुरता और सुस्पष्टता, भाषा की स्वाभाविकता, छंदों का स्वच्छंद संगीतात्मक प्रवाह और इन सब के ऊपर वह सूक्ष्म शक्ति जो प्रत्येक हृदय को स्पर्श किए बिना नहीं रह सकती कवि का व्यक्तित्व। इन्हीं गीतों के लिए प्रेमचंदजी ने लिखा था कि इनमें बच्चन का अपना व्यक्तित्व है, अपनी शैली है, अपने भाव हैं और अपनी फ़िलासफ़ी है।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

मधुशाला

(सातवाँ संस्करण)

यह कवि की १९३३-३४ में लिखित १३५ रुबाइयों का संग्रह है। हाला, प्याला, मधुबाला और मधुशाला के केवल चार प्रतीकों और इन्हीं से मिलने वाले कुछ गिनती के तुकों को लेकर बच्चन ने अपने कितने भावों और विचारों को इन रुबाइयों में भर दिया है इसे वे ही जानते हैं जिन्होंने कभी मधुशाला उनके मुँह से सुनी या स्वयं पढ़ी है। आधुनिक खड़ी बोली की कोई भी पुस्तक मधुशाला के समान लोकप्रिय नहीं हो सकी इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। अब समालोचकों ने स्वीकार कर लिया है कि मधुशाला में सौंदर्य के माध्यम से क्रांति का ज़ोरदार संदेश भी दिया गया है।

कवि ने इसे रुबाइयात उमर ख़ैयाम का अनुवाद करने के पश्चात् लिखा था इस कारण वे उसके बाहरी रूपक से प्रभावित अवश्य हुए हैं परंतु यह भीतर से सर्वथा स्वानुभूत और मौलिक रचना है जिसकी प्रतिध्वनि प्रत्येक भारतीय युवक के हृदय से होती है।

भाव, भाषा, लय और छंद एक दूसरे के इतने अनुरूप बन पड़े हैं कि हिंदी से अपरिचित व्यक्ति भी इसका वैसा ही आनंद लेते हैं जैसा कि हिंदी से सुपरिचित व्यक्ति। आज ही इसे लेकर बैठ जाइए और इसकी मस्ती से झूम उठिए।

नया संस्करण छपकर तैयार है, अपनी प्रति शीघ्र मँगालें।

ख़ैयाम की मधुशाला

(तीसरा संस्करण)

यह फ़िट्ज़जेराल्ड कृत रुबाइयात उमर ख़ैयाम का पद्यात्मक हिंदी रूपांतर है जिसे कवि ने सन् १९३३ में उपस्थित किया था। मूल पुस्तक के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। इसकी गणना संसार की सर्वोत्कृष्ट कृतियों में है। अनुवाद में प्रायः मूल का आनंद नहीं आता, परंतु बच्चन के अनुवाद में कहीं आपको यह कमी न दिखाई पड़ेगी। वे एक शब्द के स्थान पर दूसरा शब्द रखने के फेर में नहीं पड़े। उन्होंने उमर ख़ैयाम के भावों को ही प्रधानता दी है। इसी कारण उनकी यह कृति मौलिक रचना का आनंद देती है।

स्वर्गीय प्रेमचंद जी ने जनवरी '३६ के 'हंस' में पुस्तक की आलोचना करते हुए लिखा था कि 'बच्चन ने उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का अनुवाद नहीं किया ; उसी रंग में डूब गए हैं।' हिंदी में पुस्तक के और अनुवाद भी हैं पर 'लीडर' ने स्पष्टतया लिखा था कि:—

.........Bachchan has a great advantage over many translators in that he himself feels, for all we know, very much like the poet astronomer of Nishapur.

इस संस्करण में पहली बार अनुवाद के साथ-साथ मूल अंग्रेज़ी, और कवि लिखित सार-गर्भित भूमिका और टिप्पणी भी दी गई है। यदि आप अंग्रेज़ी से भिज्ञ हैं तो अनुवाद की सफलता को आप स्वयं देख सकेंगे।

यदि आपने पहले-दूसरे संस्करण देखे भी हैं तो हम आपसे इसे पढ़ने का अनुरोध करेंगे।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रारंभिक रचनाएँ—पहला भाग

(दूसरा संस्करण)

बच्चन की प्रारंभिक रचनाओं का प्रथम संग्रह 'तेरा हार' के नाम से सन् '३२ में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद उनकी दूसरी पुस्तक 'मधुशाला' सन् '३५ में प्रकाशित हुई। इन दोनों पुस्तकों में विचार-धरा तथा कवित्व की दृष्टि से बहुत अंतर था जिससे साधारण पाठक तथा आलोचक दोनों विस्मित थे। इस रहस्य का कारण था कवि की लिखी बीच की कविताओं का प्रकाश में न आना। आज जब उनकी कविताएँ लाखों पाठकों द्वारा पढ़ी जाती हैं और कवि के प्रति उनका सहज प्रेम है तब यह आवश्यक समझा गया कि उनकी बीच की कविताओं का प्रकाशन भी किया जाय। इसी विचार के अनुसार 'तेरा हार' में उसके बाद की २३ और कविताएँ सम्मिलित कर 'प्रारंभिक रचनाएँ' का पहला भाग प्रकाशित किया गया है। इस पुस्तक का दूसरा भाग भी प्रकाशित हो गया है जिससे कि 'मधुशाला' तक की लिखी सब रचनायें पाठकों के सामने आ गई हैं।

यद्यपि यह बच्चन की प्रारंभिक रचनाएँ हैं, फिर भी सभी पत्र-पत्रिकाओं ने इनकी प्रशंसा की है। बच्चन की कविताओं का क्रम-विकास समझने के लिए इसे देखना बहुत आवश्यक है।

पर इन कविताओं की महत्ता केवल ऐतिहासिक ही नहीं है। भावना की दृष्टि से भी इनके अंदर वह सचाई है जो अपने को प्रकट करने के लिए किसी कला की प्रौढ़ता की प्रतीक्षा नहीं करती।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रारंभिक रचनाएँ—दूसरा भाग

(दूसरा संस्करण)

जैसा कि नाम से ही प्रकट है यह प्रारंभिक कविताओं के संग्रह का दूसरा भाग है। प्रारंभिक रचनाएँ प्रथम भाग की लगभग आधी कविताएँ पहले 'तेरा हार' के नाम से प्रकाशित हो चुकी थीं, परंतु इस भाग की समस्त कविताएँ पहली बार जनता के सामने लाई जा रही हैं, केवल दो कविताएँ, 'कवि के आँसू' 'विशाल भारत' में, और 'ग्रीष्म बयार' 'सुधा' में प्रकाशित हुई थीं।

इस भाग की कविताएँ प्रायः १६३१-३३ के अंदर लिखी गई हैं। देश के इतिहास से परिचित लोग जानते हैं कि यह समय कितनी आशाओं, आयोजनों और दमनों का था। ऐसे समय में एक नवयुवक कवि की प्रतिक्रियाएँ क्या हुईं, इसे जानने के लिए इस पुस्तक का देखना बहुत ज़रूरी है।

बच्चन का अपनी मधुशाला के साथ प्रवेश करना एक साहित्यिक घटना थी। ये कविताएँ मधुशाला की रचना के ठीक पहले की हैं। इन्हें पढ़ने से आपको पता चल जायगा कि इनमें मधुशाला के गायक की तैयारी हो रही थी। शृंगारिकता और क्रांति का जो मिश्रण मधुशाला में दृष्टिगोचर होता है उसकी पहली झलक आपको इन कविताओं में मिलेगी। प्रारंभिक रचनाओं के दूसरे भाग का अंत ही तीन रुबाइयों के साथ होता है और उसके पश्चात ही कवि ने रुबाइयों की वह धारा प्रवाहित की कि जिसमें समस्त हिंदी समाज शराबोर हो उठा।

आप इस पुस्तक को एक बार अवश्य देखिए।

प्रारंभिक रचनाएँ — तीसरा भाग

पहला संस्करण

इस बात का पता शायद कम ही लोगों को है कि बच्चन ने साहित्य चेत्र में पहले-पहल कविताओं के साथ नहीं बल्कि कहानियों के साथ प्रवेश किया था! 'हरिवंश राय' के नाम से उनकी कई कहानियाँ, 'बच्चन' के नाम से उनकी कविताओं के प्रकाशन से पूर्व हिंदी की प्रसिद्ध मासिक पत्रिकाओं जैसे हंस, सरस्वती, माधुरी आदि में प्रकाशित हो चुकी थीं और काफ़ी पसंद की गई थीं। पर जीवन में कौन ऐसी परिस्थितियाँ आईं जिनसे उनका कवि मुखरित हो उठा और कहानीकार मौन हो गया, इससे संसार अनभिज्ञ है।

बहुत दिनों से बच्चन के ऐसे निकटस्थ परिचितों और मित्रों की, जो उनके कवि में उनके बाल-कहानीकार को न भुला सके थे, यह इच्छा थी कि उनकी कहानियों का एक संग्रह भी प्रकाशित किया जाय। इसी की पूर्ति के लिए सुषमा निकुंज द्वारा 'हृदय की आँखें' नाम से उनकी कहानियों को प्रकाशित करने का विज्ञापन कई वर्ष हुए किया गया था परंतु किसी वजह से पुस्तक छप न सकी।

अब हमने इन्हीं कहानियों को 'प्रारंभिक रचनाएँ' के तीसरे भाग में संगृहीत किया है। कहानियाँ 'प्रारंभिक रचनाएँ' की कविताओं की समकालीन हैं, इस कारण हमें इनका यही नाम देना ठीक जान पड़ा। दोनों को साथ पढ़ने वाले सहज ही इस बात का अनुभव करेंगे कि कैसे लेखक के मस्तिष्क में चार वर्ष तक कवि और कहानीकार दोनों संघर्ष करते रहे हैं और कैसे अंत में कवि विजयी हुआ है। इसका पाठ आपके लिए रोचक और मनोरंजक सिद्ध होगा।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

कवि-परिचय

हिंदी पठित जनता में बच्चन की ख्याति प्रायः 'मधुशाला' की रचना के पश्चात हुई जो सर्वप्रथम सन् १९३५ में प्रकाशित हुई थी। इसके तीन वर्ष पूर्व उनकी कविताओं का प्रथम संग्रह 'तेरा हार' के नाम से प्रकाशित हो चुका था। उस समय भी 'तेरा हार' के भावों की तरलता, भाषा की सरलता और कल्पना की सुबोधता से काव्य-रसिकों का ध्यान बच्चन की ओर आकृष्ट हुआ था। 'मधुशाला' ने उन्हें लोकप्रिय बना दिया।

बच्चन का जन्म २७ नवंबर, सन् १९०७ को प्रयाग में हुआ था। आपका नाम हरिवंशराय है, बच्चन तो घर पर पुकारने का नाम था परंतु रचनाओं के साथ उन्होंने अपना यही नाम संबद्ध किया। उनकी शिक्षा म्युनिसिपल स्कूल, कायस्थ पाठशाला, गवर्नमेंट कालिज तथा प्रयाग विश्व-विद्यालय में हुई। १९३० के सत्याग्रह आंदोलन में उन्होंने युनिवर्सिटी छोड़ दी और तभी से उनके जीवन का संघर्ष काल आरंभ हुआ। इसकी तीव्रतम स्थिति १९३६ में उनकी पत्नी के देहावसान में पहुँची। इसके पश्चात बच्चन ने फिर से युनिवर्सिटी में आकर एम० ए० किया, रिसर्च की, और आज कल आप इलाहाबाद युनिवर्सिटी के अंग्रेज़ी विभाग में लेकचरर हैं। साथ ही अपनी रुचि के अनुसार जीवन-सहचरी पाकर आपने फिर से अपने 'नीड़ का निर्माण' कर लिया है।

कविता की ओर आपकी लड़कपन से रुचि थी। १९३० से बराबर लिखते हैं। रचनाओं का विवरण प्रस्तुत पुस्तक के अंत में हो चुका है। कुछ लोगों ने बच्चन को वादों में बाँधने का प्रयत्न किया है पर उनका कहना है कि मैं जीवन की समस्त अनुभूतियों को कविता का विषय मानता हूँ, लेकिन मेरी अनुभूति में कल्पना और मेरे जीवन में मरण भी सम्मिलित हैं।